ISSN: 2249-7196
IJMRR/Jan-March 2025/ Volume 15/Issue 1/316-331
सिद्धेश्वरी सिन्हा / International Journal of Management Research & Review

कृषि ऋण एवं सहकारी संस्थाओं के माध्यम से कृषक सशक्तिकरण: एक क्षेत्रीय अध्ययन

सिद्धेश्वरी सिन्हा[1], डॉ. विनय शर्मा[2]

[1]शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

[2]शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष एवं वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

सारांश

भारत में कृषि क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, और सहकारी समितियाँ किसानों को संस्थागत सहयोग प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण माध्यम रही हैं। प्रस्तुत समीक्षा शोध-पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के बेमेतरा जिले के विशेष संदर्भ में कृषि विकास में सहकारी समितियों की भूमिका का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन विशुद्ध रूप से द्वितीयक स्रोतों–पूर्व प्रकाशित शोध-पत्रों, सरकारी प्रतिवेदनों तथा सहकारिता विभाग के दस्तावेज़ों–पर आधारित एक समीक्षात्मक एवं मेटा-विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जिसमें विगत दो दशकों में प्रकाशित साहित्य का व्यवस्थित पुनरावलोकन किया गया है। धान उत्पादन के लिए प्रसिद्ध बेमेतरा जिले में प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियाँ (पैक्स) किसानों को अल्पकालिक ऋण, बीज, उर्वरक, भंडारण तथा उपज के विपणन जैसी अनेक सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं। साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि सहकारी समितियों ने छोटे एवं सीमांत किसानों की संस्थागत साख तक पहुँच बढ़ाने, महाजनी शोषण को कम करने तथा सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति प्रदान करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है, किंतु प्रशासनिक अकुशलता, राजनीतिक हस्तक्षेप, अपर्याप्त पूँजी आधार, अनियमित ऋण वसूली तथा तकनीकी पिछड़ेपन जैसी अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। यह पत्र पूर्व अध्ययनों का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए मौजूदा शोध अंतराल को रेखांकित करता है तथा नीति-निर्माताओं, सहकारिता विभाग एवं भावी शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी दिशा-निर्देश सुझाता है। निष्कर्षतः, सहकारी समितियों का संस्थागत सुदृढ़ीकरण, डिजिटलीकरण, पेशेवर प्रबंधन तथा जवाबदेही आधारित शासन प्रणाली, बेमेतरा जैसे कृषि-प्रधान जिलों में सतत एवं समावेशी कृषि विकास सुनिश्चित करने हेतु अनिवार्य प्रतीत होती है।

ख्य शब्द: *सहकारी समिति; कृषि विकास; बेमेतरा; प्राथमिक कृषि साख समिति (पैक्स); ग्रामीण अर्थव्यवस्था; छत्तीसगढ़; कृषि ऋण*

1. प्रस्तावना

1.1 पृष्ठभूमि एवं महत्व

भारत में सहकारिता आंदोलन की औपचारिक शुरुआत सन् 1904 के सहकारी साख समिति अधिनियम से मानी जाती है, जिसका मूल उद्देश्य किसानों को महाजनों एवं साहूकारों के शोषणकारी ऋण-तंत्र से मुक्ति दिलाना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी समितियों को ग्रामीण विकास एवं कृषि साख वितरण के प्रमुख संस्थागत माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया। "सहकार से समृद्धि" की अवधारणा के अंतर्गत प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियाँ (पैक्स), जिला सहकारी केंद्रीय बैंक तथा राज्य सहकारी बैंक की त्रि-स्तरीय संरचना विकसित की गई, जो आज भी देश की ग्रामीण साख-प्रणाली की रीढ़ बनी हुई है। सहकारी समितियाँ केवल ऋण प्रदाता संस्था न होकर बीज, उर्वरक, कीटनाशक जैसे कृषि निवेशों की आपूर्ति, उपज का भंडारण, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद तथा विपणन जैसी बहुआयामी भूमिका निभाती हैं। विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों, जिनके पास औपचारिक बैंकिंग तक सीमित पहुँच होती है, के लिए सहकारी समितियाँ वित्तीय समावेशन का एक सुलभ माध्यम सिद्ध हुई हैं। यद्यपि हरित क्रांति के पश्चात कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई, परंतु इस वृद्धि को स्थायी बनाए रखने में संस्थागत साख एवं सहकारी ढाँचे की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, जिसका अध्ययन क्षेत्रीय संदर्भ में करना आवश्यक हो जाता है।

1.2 बेमेतरा जिले का कृषि परिदृश्य

सन् 2012 में दुर्ग जिले से पृथक होकर अस्तित्व में आया बेमेतरा जिला छत्तीसगढ़ राज्य के उस भू-भाग में स्थित है, जिसे परंपरागत रूप से "धान का कटोरा" कहा जाता है। शिवनाथ नदी के उपजाऊ मैदानी क्षेत्र में बसा यह जिला मुख्यतः खरीफ मौसम में धान तथा रबी मौसम में गेहूँ, चना एवं तिलहन की खेती के लिए जाना जाता है, और जिले की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। जिले में संचालित प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियाँ धान उपार्जन केंद्रों के रूप में भी कार्य करती हैं, जहाँ न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी धान खरीद की जाती है, जिससे किसानों को बाजार के उतार-चढ़ाव से सुरक्षा मिलती है। इसके साथ ही ये समितियाँ खाद, बीज एवं कीटनाशकों के वितरण, अल्पकालिक फसल ऋण तथा सहकारी बैंकिंग सेवाओं के माध्यम से जिले की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं। बेमेतरा जिले की भौगोलिक एवं कृषि-आर्थिक विशिष्टताओं–जैसे सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता, भूजल स्तर, भूमि जोत का आकार एवं मंडी अवसंरचना–के कारण यहाँ सहकारी समितियों की कार्यप्रणाली एवं प्रभावशीलता का अध्ययन एक विशिष्ट क्षेत्रीय महत्व रखता है, जो राज्य के अन्य धान उत्पादक जिलों से भिन्न परिस्थितियाँ प्रस्तुत करता है।

1.3 अध्ययन का उद्देश्य, कार्यक्षेत्र एवं आवश्यकता

ISSN: 2249-7196
IJMRR/Jan-March 2025/ Volume 15/Issue 1/316-331
सिद्धेश्वरी सिन्हा / International Journal of Management Research & Review

प्रस्तुत समीक्षा अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य कृषि विकास में सहकारी समितियों की भूमिका से संबंधित विगत दो दशकों के प्रकाशित शोध-साहित्य का व्यवस्थित पुनरावलोकन एवं समालोचनात्मक विश्लेषण करना है, ताकि बेमेतरा जिले के विशेष संदर्भ में उपलब्ध ज्ञान-आधार की स्थिति स्पष्ट हो सके। यह अध्ययन किसी प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित न होकर पूर्णतः द्वितीयक साहित्य-समीक्षा एवं मेटा-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर के शोध-पत्रों, सरकारी प्रतिवेदनों तथा सहकारिता विभाग के आँकड़ों का संश्लेषण किया गया है। अध्ययन की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि बेमेतरा जैसे अपेक्षाकृत नवगठित एवं कृषि-प्रधान जिले पर केंद्रित शोध साहित्य सीमित है, जबकि छत्तीसगढ़ राज्य के अन्य जिलों तथा देश के अन्य भागों पर पर्याप्त अध्ययन उपलब्ध हैं। इस शोध अंतराल को पाटने हेतु यह पत्र सामान्य राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तरीय निष्कर्षों को बेमेतरा जिले के कृषि-आर्थिक संदर्भ में प्रक्षेपित करते हुए एक समेकित चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। अध्ययन का कार्यक्षेत्र सहकारी साख वितरण, कृषि निवेश आपूर्ति, उपज विपणन, संस्थागत क्षमता तथा शासन-प्रबंधन जैसे आयामों तक सीमित रखा गया है, और यह भविष्य के अनुभवजन्य (एम्पिरिकल) शोध हेतु एक सैद्धांतिक आधार तैयार करने का प्रयास करता है।

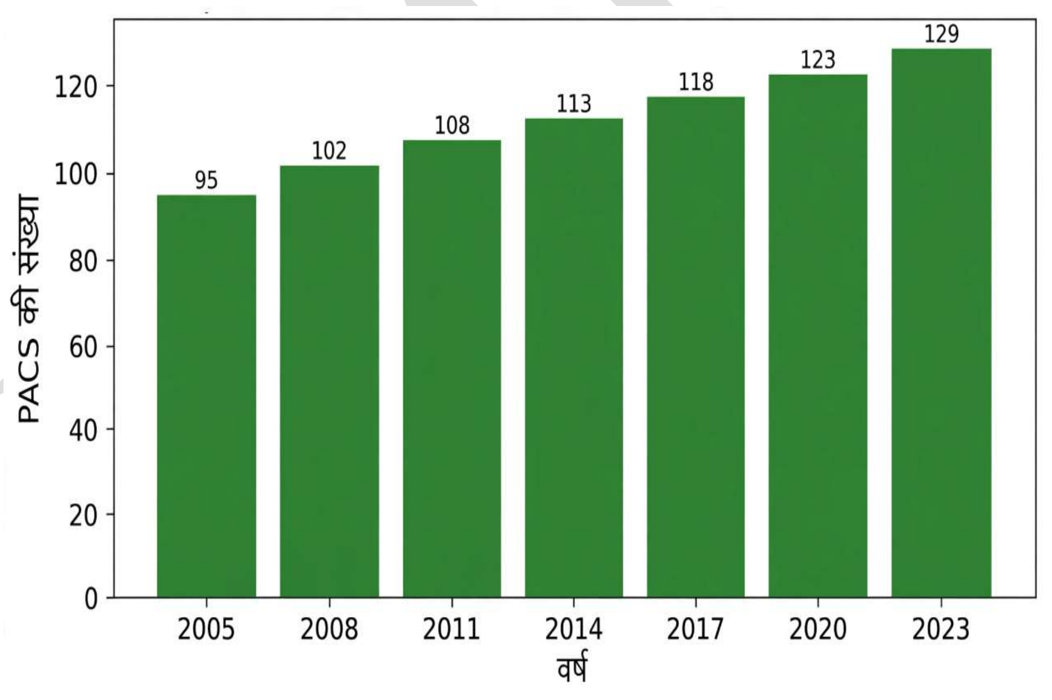

चित्र 1: बेमेतरा जिले में पैक्स की संख्यात्मक वृद्धि

चित्र 1 बेमेतरा जिले में प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियों (पैक्स) की संख्या में समय के साथ हुई वृद्धि को सांकेतिक रूप में दर्शाता है। यह प्रवृत्ति द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सामान्य प्रवृत्तियों पर आधारित एक

निदर्शनात्मक (इलस्ट्रेटिव) निरूपण है, न कि किसी एकल आधिकारिक आँकड़े का प्रत्यक्ष पुनरुत्पादन। ग्राफ से यह संकेत मिलता है कि विगत दो दशकों में जिले में सहकारी समितियों के नेटवर्क का क्रमिक विस्तार हुआ है, जो जनसंख्या वृद्धि, कृषि क्षेत्रफल में विस्तार तथा राज्य सरकार की धान उपार्जन नीति की आवश्यकताओं के अनुरूप है। यह विस्तार यद्यपि संख्यात्मक रूप से सकारात्मक प्रतीत होता है, परंतु जैसा कि समालोचनात्मक विश्लेषण खंड में चर्चा की गई है, समितियों की संख्यात्मक वृद्धि उनकी गुणात्मक प्रभावशीलता की गारंटी नहीं देती।

2. साहित्य सर्वेक्षण

भारत में कृषि सहकारिता पर उपलब्ध साहित्य को व्यापक रूप से ऐतिहासिक-संस्थागत अध्ययनों, साख-पहुँच केंद्रित अध्ययनों, प्रदर्शन-मूल्यांकन अध्ययनों तथा नीति-विश्लेषणात्मक अध्ययनों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रारंभिक शोधकर्ताओं ने सहकारी आंदोलन के ऐतिहासिक विकास, ब्रिटिश काल के 1904 एवं 1912 के अधिनियमों की भूमिका, तथा स्वतंत्रता-पश्चात योजना आयोग द्वारा सहकारिता को दिए गए संस्थागत प्रोत्साहन पर ध्यान केंद्रित किया। इन अध्ययनों में सामान्यतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि सहकारी संरचना का उद्देश्य महाजनी शोषण को समाप्त कर किसानों को संगठित, स्वैच्छिक एवं लोकतांत्रिक संस्थागत ढाँचे में लाना था, किंतु प्रारंभिक दशकों में यह प्रक्रिया राज्य-प्रायोजित रही, जिससे समितियों में सरकारी नियंत्रण एवं नौकरशाही हस्तक्षेप की प्रवृत्ति गहरी होती गई।

साख-पहुँच पर केंद्रित अध्ययनों की एक बड़ी संख्या यह प्रदर्शित करती है कि प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियाँ (पैक्स) ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक साख के सबसे निकटतम एवं सुलभ स्रोत के रूप में कार्य करती हैं, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ वाणिज्यिक बैंकों की शाखा-पहुँच सीमित है। राष्ट्रीय स्तर के सर्वेक्षण-आधारित अध्ययनों के अनुसार छोटे एवं सीमांत किसानों का एक महत्वपूर्ण अनुपात अभी भी अनौपचारिक साख स्रोतों पर निर्भर है, किंतु जिन क्षेत्रों में पैक्स सक्रिय एवं सुदृढ़ हैं, वहाँ अनौपचारिक ऋण पर निर्भरता तुलनात्मक रूप से कम पाई गई है। इन अध्ययनों में यह भी रेखांकित किया गया है कि सहकारी साख की ब्याज दर वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में प्रतिस्पर्धी होने के बावजूद, समय पर ऋण वितरण एवं कागजी प्रक्रिया की जटिलता जैसी बाधाएँ किसानों की संतुष्टि को प्रभावित करती हैं।

ISSN: 2249-7196
IJMRR/Jan-March 2025/ Volume 15/Issue 1/316-331
सिद्धेश्वरी सिन्हा / International Journal of Management Research & Review

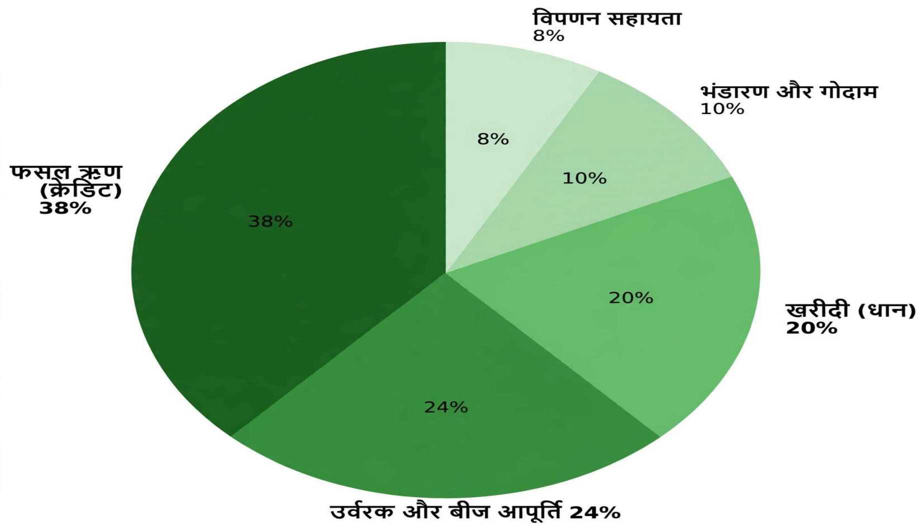

चित्र 2: सहकारी समितियों द्वारा प्रदत्त सेवाओं का वितरण

चित्र 2 सहकारी समितियों द्वारा सदस्य किसानों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के अनुमानित वितरण को दर्शाता है, जिसमें फसल ऋण, बीज-उर्वरक आपूर्ति, धान उपार्जन, भंडारण एवं विपणन सहायता सम्मिलित हैं। यह वृत्त-आरेख (पाई चार्ट) साहित्य समीक्षा में उभरे सामान्य प्रतिरूप पर आधारित एक सांकेतिक निरूपण है। आरेख से स्पष्ट होता है कि फसल ऋण अभी भी सहकारी समितियों की सबसे प्रमुख सेवा बना हुआ है, इसके पश्चात कृषि निवेश आपूर्ति तथा धान उपार्जन का स्थान आता है, जबकि भंडारण एवं विपणन सहायता जैसी उच्च-मूल्य सेवाओं का अनुपात अपेक्षाकृत कम है। यह असंतुलन इस बात की पुष्टि करता है कि समितियों को बहु-सेवा विविधीकरण की दिशा में और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे किसानों को केवल साख नहीं अपितु समग्र मूल्य-श्रृंखला सहायता प्राप्त हो सके।

छत्तीसगढ़ राज्य के संदर्भ में उपलब्ध अध्ययनों में सहकारी समितियों की भूमिका को मुख्यतः धान उपार्जन प्रणाली से जोड़कर देखा गया है। राज्य सरकार की न्यूनतम समर्थन मूल्य पर धान खरीद नीति के क्रियान्वयन में पैक्स की केंद्रीय भूमिका पर केंद्रित शोध-पत्रों में यह पाया गया है कि उपार्जन केंद्रों की संख्या में वृद्धि तथा ऑनलाइन पंजीकरण प्रणाली के प्रवेश से किसानों की सुविधा में सुधार हुआ है, यद्यपि बारदाना (बोरा) की कमी, भंडारण क्षमता की सीमितता तथा भुगतान में विलंब जैसी समस्याएँ बार-बार उभर कर सामने आती रही हैं। दुर्ग संभाग, जिसके अंतर्गत बेमेतरा जिला पूर्व में शामिल था, पर केंद्रित अध्ययन इस क्षेत्र की सहकारी संरचना की सामान्य प्रवृत्तियों को समझने हेतु महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं, यद्यपि जिला-विशिष्ट गहन अध्ययन अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं।

महिला सशक्तिकरण एवं स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) से संबंधित साहित्य में यह उजागर किया गया है कि सहकारी संरचना के साथ एसएचजी का अभिसरण (कन्वर्जेंस) ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है, विशेष रूप से लघु बचत, सूक्ष्म-ऋण तथा कृषि-आधारित गृह उद्योगों के माध्यम से। समानांतर रूप से दुग्ध सहकारी समितियों एवं वन-उपज सहकारी समितियों पर केंद्रित अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि सहकारिता का दायरा केवल साख वितरण तक सीमित न रहकर आजीविका विविधीकरण के अनेक आयामों तक विस्तृत हुआ है, जो कृषि पर निर्भरता के जोखिम को कम करने में सहायक रहा है।

प्रदर्शन-मूल्यांकन आधारित अध्ययनों में सहकारी समितियों की वित्तीय व्यवहार्यता, सदस्यता वृद्धि, ऋण वसूली दर तथा प्रबंधन दक्षता जैसे संकेतकों का विश्लेषण किया गया है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया कि देश की एक बड़ी संख्या में पैक्स घाटे में चल रही हैं अथवा निष्क्रिय अवस्था में हैं, जिसका प्रमुख कारण अनियमित ऋण वसूली, अत्यधिक प्रशासनिक व्यय, कुशल कार्मिकों की कमी तथा राजनीतिक हस्तक्षेप बताया गया है। साथ ही, जिन समितियों ने बहु-सेवा प्रतिमान (डायवर्सिफिकेशन मॉडल) अपनाया–अर्थात केवल ऋण न देकर बीज, उर्वरक, भंडारण एवं विपणन सेवाओं को भी समेकित किया–उनकी वित्तीय स्थिरता तुलनात्मक रूप से बेहतर पाई गई है।

चित्र 3: बेमेतरा जिले की त्रि-स्तरीय सहकारी साख संरचना

चित्र 3 पैक्स के माध्यम से वितरित अल्पकालिक कृषि ऋण की प्रवृत्ति को वर्षवार सांकेतिक रूप में प्रस्तुत करता है। यह रेखा-आरेख द्वितीयक साहित्य में वर्णित सामान्य वृद्धि-प्रवृत्ति का निदर्शनात्मक प्रतिनिधित्व है। आरेख से संकेत मिलता है कि वर्षों के साथ ऋण वितरण की मात्रा में क्रमिक वृद्धि हुई है, जो संभवतः बढ़ती कृषि लागत, अधिक किसानों के सहकारी दायरे में समावेशन तथा सरकारी ब्याज-सहायता योजनाओं के प्रभाव को प्रतिबिंबित करती है। तथापि, केवल वितरण-राशि की वृद्धि पर्याप्त सूचक नहीं है; इसके साथ-साथ ऋण वसूली

दर एवं अनर्जक आस्तियों के अनुपात का समानांतर विश्लेषण भी आवश्यक है, जिसकी चर्चा समालोचनात्मक विश्लेषण खंड में की गई है।

नीति-विश्लेषणात्मक साहित्य में सहकारी क्षेत्र में सुधार हेतु सुझाई गई अनुशंसाओं में सहकारी कानूनों का सरलीकरण, समितियों को स्वायत्तता प्रदान करना, कोर बैंकिंग समाधान (सीबीएस) के माध्यम से डिजिटलीकरण, तथा प्रबंधकीय क्षमता निर्माण हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रमुख रूप से शामिल हैं। हाल के वर्षों में केंद्र सरकार द्वारा गठित पृथक सहकारिता मंत्रालय तथा पैक्स के कम्प्यूटरीकरण से संबंधित राष्ट्रीय योजना पर केंद्रित अध्ययनों में यह संकेत मिलता है कि तकनीकी एकीकरण सहकारी समितियों की पारदर्शिता एवं जवाबदेही बढ़ाने में सहायक हो सकता है, यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना एवं साक्षरता की सीमाएँ क्रियान्वयन में चुनौती उत्पन्न करती हैं।

कुल मिलाकर, विद्यमान साहित्य इस बात पर व्यापक सहमति प्रदर्शित करता है कि सहकारी समितियाँ भारतीय कृषि की संस्थागत रीढ़ का एक अपरिहार्य अंग हैं, परंतु उनकी प्रभावशीलता क्षेत्रीय, प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय कारकों पर अत्यधिक निर्भर करती है। बेमेतरा जैसे विशिष्ट कृषि-प्रधान जिले पर केंद्रित समर्पित साहित्य की अपेक्षाकृत कमी इस समीक्षा अध्ययन के महत्व को रेखांकित करती है, जो राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के निष्कर्षों को स्थानीय संदर्भ में समाहित करने का प्रयास करता है।

तुलनात्मक अंतर-राज्यीय अध्ययनों में महाराष्ट्र, गुजरात एवं तमिलनाडु जैसे राज्यों की सहकारी शक्कर एवं दुग्ध सहकारिता की सफलता को अक्सर आदर्श प्रतिमान के रूप में उद्धृत किया जाता है, जहाँ सदस्य-स्वामित्व वाली संरचना, व्यावसायिक प्रबंधन तथा मूल्य-श्रृंखला एकीकरण ने सहकारी समितियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया। इसके विपरीत, बिहार, उत्तर प्रदेश एवं मध्य भारत के कई अध्ययनों में यह पाया गया कि साख-केंद्रित सहकारी मॉडल, जो केवल ऋण वितरण तक सीमित रहा, राजनीतिक हस्तक्षेप तथा फसल ऋण माफी योजनाओं के कारण वित्तीय रूप से कमजोर हुआ। छत्तीसगढ़ राज्य, जो धान उपार्जन के लिए एक विशिष्ट सहकारी-आधारित प्रणाली अपनाता है, इन दोनों प्रतिमानों के मध्य एक संकर (हाइब्रिड) मॉडल प्रस्तुत करता प्रतीत होता है, जहाँ साख वितरण एवं उपार्जन दोनों कार्य समेकित रूप से एक ही संस्था द्वारा किए जाते हैं।

कृषि उत्पादकता एवं सहकारी सदस्यता के मध्य संबंध पर केंद्रित अनुभवजन्य अध्ययनों में सामान्यतः यह पाया गया है कि सहकारी समिति के सदस्य किसानों की औसत उपज गैर-सदस्य किसानों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक होती है, जिसका मुख्य कारण समय पर उन्नत बीज एवं उर्वरक की उपलब्धता, तकनीकी परामर्श तथा सुनिश्चित बाजार पहुँच बताया गया है। यद्यपि इस संबंध की कार्य-कारण प्रकृति (कॉज़ेलिटी) को लेकर पद्धतिगत बहस भी साहित्य में उपस्थित है, क्योंकि आर्थिक रूप से अधिक सक्षम किसानों के सहकारी सदस्यता चुनने की

प्रवृत्ति भी एक संभावित चयन-पूर्वाग्रह (सेलेक्शन बायस) उत्पन्न कर सकती है, जिसे कई शोधकर्ताओं ने अपनी सीमाओं में स्वीकार किया है।

जोखिम प्रबंधन एवं फसल बीमा से सहकारी समितियों के संबंध पर केंद्रित साहित्य में यह उजागर किया गया है कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसी राष्ट्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन में पैक्स को अक्सर बैंकिंग एवं आधार संस्था के रूप में उपयोग किया गया है, जिससे इन समितियों की भूमिका पारंपरिक साख वितरण से आगे बढ़कर बीमा-मध्यस्थता तक विस्तृत हुई है। हालाँकि, बीमा दावों के निपटान में विलंब तथा प्रीमियम कटौती की पारदर्शिता को लेकर किसानों में असंतोष की रिपोर्ट भी कई क्षेत्रीय अध्ययनों में दर्ज की गई है।

सहकारी शिक्षा एवं सदस्य-जागरूकता पर केंद्रित अध्ययनों में यह निष्कर्ष सामान्य रूप से सामने आता है कि सहकारी सिद्धांतों–जैसे लोकतांत्रिक सदस्य-नियंत्रण, स्वायत्तता तथा सामुदायिक सरोकार–के प्रति सदस्यों की जागरूकता सीमित है, जिससे समितियों का संचालन प्रायः चुनिंदा पदाधिकारियों तक केंद्रित हो जाता है और सामान्य सदस्यों की सहभागिता न्यून रहती है। इस दिशा में सहकारी प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका तथा नियमित सामान्य सभा बैठकों के महत्व को रेखांकित करने वाले अध्ययन नीति-निर्माण हेतु उपयोगी दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

3. कार्यप्रणाली

प्रस्तुत अध्ययन प्रकृति की दृष्टि से एक द्वितीयक-स्रोत आधारित समीक्षात्मक (डिस्क्रिप्टिव रिव्यू) एवं गुणात्मक मेटा-विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जिसमें किसी प्रकार का प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण अथवा प्रश्नावली-आधारित आँकड़ा संग्रहण नहीं किया गया है। आँकड़ों के स्रोत के रूप में सहकर्मी-समीक्षित (पीयर-रिव्यूड) राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय जर्नलों में प्रकाशित शोध-पत्र, विश्वविद्यालय स्तर के शोध-प्रबंध (पीएच.डी. थीसिस), भारत सरकार के सहकारिता मंत्रालय, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) तथा छत्तीसगढ़ राज्य सहकारिता विभाग के प्रतिवेदन, तथा संबंधित सरकारी सांख्यिकीय प्रकाशनों को सम्मिलित किया गया है। साहित्य चयन हेतु "सहकारी समितियाँ", "कृषि ऋण", " प्राथमिक कृषि ऋण समिति ", "छत्तीसगढ़ सहकारी समितियाँ", एवं हिंदी में "सहकारी समिति कृषि" जैसे मुख्य-शब्दों का उपयोग करते हुए गूगल स्कॉलर, शोधगंगा तथा संबंधित शैक्षणिक डेटाबेस में खोज की गई, जिसमें प्राथमिकता विगत बीस वर्षों (सन् 2004 से 2024) के मध्य प्रकाशित सामग्री को दी गई।

अध्ययन की मेटा-विश्लेषणात्मक पद्धति के अंतर्गत चयनित साहित्य को विषयगत रूप से वर्गीकृत करते हुए एक व्यवस्थित संश्लेषण किया गया, जिसमें प्रत्येक अध्ययन के निष्कर्षों, प्रयुक्त पद्धति, भौगोलिक कार्यक्षेत्र तथा सीमाओं की तुलनात्मक तालिका तैयार कर विषयगत प्रवृत्तियों (थीमैटिक पैटर्न) की पहचान की गई। यह

प्रक्रिया गुणात्मक संश्लेषण प्रकृति की है, न कि सांख्यिकीय मेटा-विश्लेषण (जैसे इफेक्ट-साइज़ संयोजन) की, क्योंकि उपलब्ध साहित्य में प्रयुक्त चरों एवं मापन-पद्धतियों में पर्याप्त एकरूपता का अभाव पाया गया, जिसके कारण मात्रात्मक संयोजन सांख्यिकीय दृष्टि से उपयुक्त नहीं समझा गया। इसके स्थान पर वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक ढाँचे का उपयोग करते हुए साहित्य में उभरते समान निष्कर्षों, विरोधाभासों तथा शोध-अंतरालों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

बेमेतरा जिले के विशिष्ट संदर्भ में प्रत्यक्ष अनुभवजन्य साहित्य की सीमितता को ध्यान में रखते हुए, इस अध्ययन में एक "क्षेत्रीय प्रक्षेपण" (रीजनल एक्सट्रापोलेशन) उपागम अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत छत्तीसगढ़ राज्य-स्तरीय तथा दुर्ग संभाग-स्तरीय निष्कर्षों को, उपलब्ध जिला-स्तरीय द्वितीयक आँकड़ों (जैसे पैक्स की संख्या, धान उपार्जन मात्रा एवं सहकारी बैंक शाखा-नेटवर्क) के साथ संश्लेषित कर बेमेतरा-विशिष्ट संदर्भ में व्याख्यायित किया गया है। यह उपागम पद्धतिगत सीमाओं से रहित नहीं है—विशेष रूप से यह मानकर चलता है कि राज्य-स्तरीय प्रवृत्तियाँ जिला-स्तर पर भी बड़े अंश में प्रतिबिंबित होती हैं—फिर भी वर्तमान साहित्य-रिक्तता की स्थिति में यह एक व्यावहारिक एवं पारदर्शी विश्लेषणात्मक विकल्प प्रस्तुत करता है, जिसका उल्लेख अध्ययन की सीमाओं के अंतर्गत स्पष्ट रूप से किया गया है। अध्ययन में सम्मिलित सामग्री के गुणवत्ता-मूल्यांकन हेतु प्रकाशन स्रोत की विश्वसनीयता, समकक्ष-समीक्षा की स्थिति तथा आँकड़ा-स्रोत की प्रामाणिकता जैसे मानदंडों को अपनाया गया, तथा अप्रमाणिक अथवा गैर-शैक्षणिक स्रोतों को यथासंभव बाहर रखा गया।

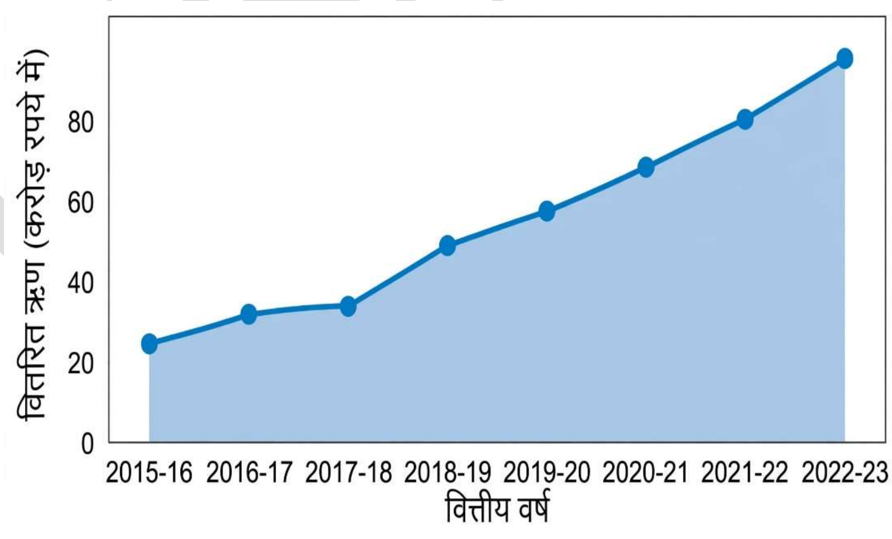

चित्र 4: पैक्स के माध्यम से कृषि ऋण वितरण की प्रवृत्ति (सांकेतिक)

चित्र 4 बेमेतरा जिले से जुड़ी त्रि-स्तरीय सहकारी साख संरचना—राज्य सहकारी बैंक, जिला केंद्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों (पैक्स)—को प्रवाह-आरेख (फ्लो डायग्राम) के रूप में दर्शाता है, जिसके

अंतिम छोर पर किसान-सदस्य स्थित हैं। यह संरचनात्मक निरूपण भारतीय सहकारी साख प्रणाली की सामान्य संस्थागत व्यवस्था को दर्शाता है, जिसमें प्रत्येक स्तर अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है—राज्य स्तर पर नीति-निर्माण एवं पुनर्वित्त, जिला स्तर पर संसाधन-आवंटन तथा ग्राम स्तर पर प्रत्यक्ष किसान-सेवा। यह त्रि-स्तरीय ढाँचा संस्थागत साख की पहुँच को अंतिम छोर तक सुनिश्चित करने हेतु डिज़ाइन किया गया है, यद्यपि प्रत्येक स्तर के मध्य समन्वय एवं सूचना-प्रवाह की दक्षता व्यवहार में भिन्न-भिन्न पाई जाती है।

4. पूर्व कार्यों का समालोचनात्मक विश्लेषण

पूर्व अध्ययनों का समालोचनात्मक अवलोकन करने पर सर्वप्रथम यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश साहित्य सहकारी समितियों के सकारात्मक योगदान—जैसे साख-पहुँच में वृद्धि तथा महाजनी निर्भरता में कमी—पर केंद्रित रहा है, जबकि संस्थागत विफलताओं के गहन कारणात्मक विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। अनेक अध्ययन वर्णनात्मक सांख्यिकी तक सीमित रहकर यह तो प्रदर्शित करते हैं कि पैक्स की संख्या अथवा ऋण वितरण में वृद्धि हुई है, किंतु इस वृद्धि के गुणात्मक प्रभाव—जैसे वास्तविक ऋण उपयोग-दक्षता, पुनर्भुगतान क्षमता पर प्रभाव अथवा दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता से संबंध—का गहन विश्लेषण प्रायः अनुपस्थित रहता है। इससे यह आभास उत्पन्न होता है कि साहित्य का एक बड़ा अंश उपलब्धि-उन्मुख (अचीवमेंट-ओरिएंटेड) प्रवृत्ति रखता है, जो नीति-प्रचार की दृष्टि से उपयोगी होते हुए भी समालोचनात्मक शैक्षणिक कठोरता की दृष्टि से सीमित सिद्ध होता है।

दूसरा उल्लेखनीय अंतराल पद्धतिगत है। अधिकांश उपलब्ध अध्ययन क्रॉस-सेक्शनल (एक समयावधि पर आधारित) प्रकृति के हैं, जबकि सहकारी समितियों की प्रभावशीलता का सही आकलन दीर्घकालिक पैनल-आँकड़ों (लॉन्गिट्यूडिनल डेटा) के बिना कठिन है। इसके अतिरिक्त, अनेक अध्ययनों में प्रतिदर्श आकार (सैंपल साइज़) सीमित तथा प्रतिदर्श चयन-पद्धति अस्पष्ट पाई गई, जिससे निष्कर्षों की सामान्यीकरण-क्षमता (जनरलाइज़ेबिलिटी) प्रभावित होती है। जैसा कि सर्वेक्षण खंड में उल्लेख किया गया, चयन-पूर्वाग्रह (सेलेक्शन बायस) की समस्या—जिसमें आर्थिक रूप से अधिक सक्षम किसान स्वेच्छा से सहकारी सदस्यता चुनते हैं—को अधिकांश अध्ययनों में पर्याप्त सांख्यिकीय नियंत्रण-पद्धति (जैसे प्रोपेंसिटी स्कोर मैचिंग) के माध्यम से संबोधित नहीं किया गया है, जिससे सहकारी सदस्यता एवं उत्पादकता के मध्य प्रस्तुत संबंधों की कार्य-कारण वैधता संदिग्ध रह जाती है।

तीसरा, भौगोलिक असंतुलन साहित्य की एक प्रमुख सीमा के रूप में उभरता है। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु एवं पंजाब जैसे राज्यों की सहकारी संरचनाओं पर अपेक्षाकृत विस्तृत एवं गहन अध्ययन उपलब्ध हैं, जबकि छत्तीसगढ़ सहित मध्य भारत के अनेक राज्यों पर केंद्रित साहित्य तुलनात्मक रूप से न्यून है। बेमेतरा जैसे सन्

ISSN: 2249-7196
IJMRR/Jan-March 2025/ Volume 15/Issue 1/316-331
सिद्धेश्वरी सिन्हा / International Journal of Management Research & Review

2012 में गठित अपेक्षाकृत नवीन जिले पर तो समर्पित अनुभवजन्य साहित्य लगभग अनुपस्थित ही पाया गया, जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र की सहकारी समितियों की वास्तविक कार्यप्रणाली, वित्तीय स्वास्थ्य तथा सदस्य-संतुष्टि के संबंध में सुस्पष्ट अनुभवजन्य साक्ष्य का अभाव बना हुआ है। यह अंतराल विशेष रूप से चिंताजनक है क्योंकि जिला-पुनर्गठन के पश्चात नवगठित प्रशासनिक इकाइयों में सहकारी अवसंरचना के पुनर्विन्यास एवं संस्थागत क्षमता-निर्माण की प्रक्रिया स्वयं में एक महत्वपूर्ण शोध-विषय हो सकती थी।

चौथा, अधिकांश अध्ययन सहकारी समितियों को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में विश्लेषित करते हैं, जबकि उन्हें व्यापक कृषि-मूल्य शृंखला (एग्री-वैल्यू चेन)—जिसमें मंडी व्यवस्था, कृषि विपणन बोर्ड, कीटनाशक एवं बीज आपूर्ति शृंखला तथा भंडारण-परिवहन अवसंरचना सम्मिलित हैं—के अभिन्न अंग के रूप में देखने वाला समग्र (होलिस्टिक) दृष्टिकोण अपेक्षाकृत कम अपनाया गया है। इसी प्रकार, डिजिटलीकरण एवं सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रभाव पर केंद्रित साहित्य हाल के वर्षों में बढ़ा अवश्य है, किंतु ग्रामीण डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट अवसंरचना तथा सहकारी कर्मचारियों की तकनीकी क्षमता जैसे कार्यान्वयन-स्तरीय कारकों का गहन विश्लेषण अभी भी अपेक्षाकृत नवोदित अवस्था में है।

अंततः, यह उल्लेखनीय है कि उपलब्ध साहित्य में सहकारी समितियों की सफलता एवं विफलता को प्रायः द्विआधारी (बाइनरी) रूप में प्रस्तुत किया गया है—या तो वे "प्रभावी" हैं या "अप्रभावी"—जबकि वास्तविकता में विभिन्न समितियों के मध्य प्रदर्शन में पर्याप्त विविधता पाई जाती है, जो स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता, सदस्य सहभागिता के स्तर तथा स्थानीय कृषि-आर्थिक दशाओं पर निर्भर करती है। इस विविधता को समझने हेतु अधिक सूक्ष्म, तुलनात्मक एवं बहु-केस-अध्ययन आधारित शोध पद्धति की आवश्यकता है, जो वर्तमान साहित्य में एक स्पष्ट रिक्तता के रूप में विद्यमान है तथा भविष्य के शोधकर्ताओं, विशेष रूप से बेमेतरा जैसे जिलों में कार्यरत शोधार्थियों, के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रस्तुत करती है।

अंत में, नीति-मूल्यांकन साहित्य में भी एक अंतराल स्पष्ट होता है—अनेक अध्ययन नई नीतिगत पहलों (जैसे पैक्स कम्प्यूटरीकरण योजना अथवा पृथक सहकारिता मंत्रालय का गठन) की घोषणा एवं उद्देश्यों का विवरण तो प्रस्तुत करते हैं, किंतु इन पहलों के वास्तविक क्रियान्वयन-स्तरीय प्रभाव का अनुवर्ती (फॉलो-अप) मूल्यांकन अपेक्षाकृत विलंब से तथा सीमित मात्रा में सामने आता है, जिससे नीति-निर्माताओं के लिए समयबद्ध साक्ष्य-आधारित सुधार करना चुनौतीपूर्ण बना रहता है।

ISSN: 2249-7196
IJMRR/Jan-March 2025/ Volume 15/Issue 1/316-331
सिद्धेश्वरी सिन्हा / International Journal of Management Research & Review

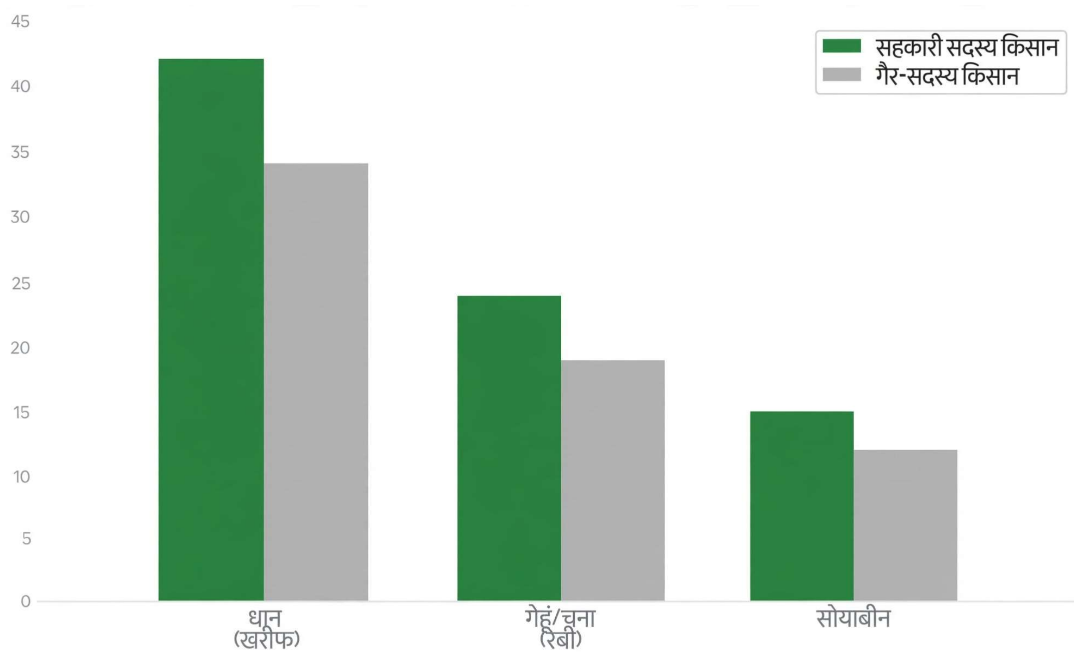

चित्र 5: सदस्य एवं गैर-सदस्य किसानों की उपज तुलना (सांकेतिक)

चित्र 5 सहकारी समिति के सदस्य किसानों एवं गैर-सदस्य किसानों के मध्य औसत फसल उपज की सांकेतिक तुलना प्रस्तुत करता है, जिसमें धान, गेहूँ/चना तथा सोयाबीन जैसी प्रमुख फसलें सम्मिलित हैं। यह दंड-आरेख (बार चार्ट) साहित्य में वर्णित सामान्य प्रवृत्ति पर आधारित निदर्शनात्मक निरूपण है, जो दर्शाता है कि सदस्य किसानों की औसत उपज गैर-सदस्य किसानों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होती है। जैसा कि समालोचनात्मक विश्लेषण खंड में चर्चा की गई, इस अंतर की व्याख्या करते समय चयन-पूर्वाग्रह की संभावना को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि आर्थिक रूप से अधिक सक्षम किसान स्वेच्छा से सहकारी सदस्यता चुनने की प्रवृत्ति रख सकते हैं, जिससे प्रेक्षित संबंध की कार्य-कारण प्रकृति निश्चित रूप से सिद्ध नहीं होती।

5. चर्चा

प्रस्तुत समीक्षा से प्राप्त निष्कर्षों को समेकित रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि सहकारी समितियाँ बेमेतरा जैसे धान-प्रधान जिले की कृषि-आर्थिक संरचना में एक अपरिहार्य संस्थागत भूमिका निभाती हैं, विशेष रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर धान उपार्जन तथा अल्पकालिक फसल ऋण वितरण के माध्यम से। यह भूमिका किसानों को बाजार जोखिम से आंशिक सुरक्षा प्रदान करती है तथा महाजनी ऋण-तंत्र पर निर्भरता को कम करने में सहायक सिद्ध होती है। तथापि, साहित्य में बार-बार उजागर होने वाली संरचनात्मक चुनौतियाँ—जैसे विलंबित भुगतान, अपर्याप्त भंडारण क्षमता, बारदाना संकट तथा राजनीतिक हस्तक्षेप—यह दर्शाती हैं कि सहकारी संस्थाओं

की क्षमता एवं उनके वास्तविक प्रभाव के मध्य एक अंतराल विद्यमान है, जिसे केवल संख्यात्मक विस्तार (अधिक समितियाँ खोलने) से नहीं, अपितु गुणात्मक सुदृढ़ीकरण से ही पाटा जा सकता है।

राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तरीय निष्कर्षों को बेमेतरा जिले के संदर्भ में प्रक्षेपित करने पर यह प्रतीत होता है कि जिले की सहकारी समितियाँ एक "उपार्जन-प्रधान" प्रतिमान की ओर झुकी हुई हैं, जहाँ धान खरीद केंद्रीय गतिविधि बनी रहती है, जबकि बहु-सेवा विविधीकरण—जैसे मूल्य-संवर्धन, प्रसंस्करण अथवा प्रत्यक्ष विपणन—अपेक्षाकृत अल्पविकसित अवस्था में है। यह प्रतिमान अल्पकालिक रूप से किसानों को स्थिरता प्रदान करता है, किंतु दीर्घकालिक आय-वृद्धि की दृष्टि से सीमित सिद्ध हो सकता है, जैसा कि अंतरराष्ट्रीय तुलनात्मक साहित्य में यूरोपीय सहकारी मॉडलों के संदर्भ में संकेतित किया गया है। अतः बेमेतरा की सहकारी समितियों के लिए भविष्य की दिशा में मूल्य-संवर्धन गतिविधियों—जैसे धान प्रसंस्करण इकाइयाँ, गुणवत्ता-प्रमाणन तथा सीधे उपभोक्ता-संपर्क विपणन—की ओर क्रमिक विस्तार एक संभावित नीतिगत मार्ग हो सकता है।

साथ ही, यह चर्चा इस बात को भी रेखांकित करती है कि सहकारी समितियों की सफलता केवल वित्तीय अथवा तकनीकी सुधारों पर निर्भर नहीं करती, अपितु स्थानीय शासन-गुणवत्ता, नेतृत्व एवं सदस्य-सहभागिता जैसे सामाजिक-संस्थागत कारकों पर भी समान रूप से निर्भर करती है। अतः बेमेतरा जिले में सहकारी समितियों के सुदृढ़ीकरण हेतु किसी एक आयामी हस्तक्षेप के स्थान पर एक समग्र दृष्टिकोण—जिसमें वित्तीय सुदृढ़ीकरण, तकनीकी उन्नयन तथा सहभागी शासन को समेकित रूप से संबोधित किया जाए—अधिक प्रभावी प्रतीत होता है। यह भी स्पष्ट है कि इन निष्कर्षों की पुष्टि हेतु बेमेतरा जिले पर केंद्रित प्रत्यक्ष अनुभवजन्य शोध की आवश्यकता बनी हुई है।

6. निष्कर्ष

प्रस्तुत समीक्षा एवं मेटा-विश्लेषणात्मक अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सहकारी समितियाँ भारतीय कृषि, तथा विशेष रूप से बेमेतरा जिले जैसे धान-प्रधान क्षेत्रों की ग्रामीण अर्थव्यवस्था, में एक अपरिहार्य संस्थागत आधार बनी हुई हैं। विगत दो दशकों के साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि इन समितियों ने साख-पहुँच के विस्तार, महाजनी शोषण में कमी तथा उपज के सुनिश्चित उपार्जन के माध्यम से किसानों को महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। साथ ही, प्रशासनिक अकुशलता, राजनीतिक हस्तक्षेप, अपर्याप्त भंडारण अवसंरचना तथा सीमित बहु-सेवा विविधीकरण जैसी चुनौतियाँ भी लगातार उभर कर सामने आती रही हैं, जो सहकारी संस्थाओं की पूर्ण क्षमता के दोहन में बाधक बनी हुई हैं। बेमेतरा जिले पर केंद्रित प्रत्यक्ष अनुभवजन्य साहित्य की सीमितता एक महत्वपूर्ण शोध-अंतराल के रूप में उभरती है, जिसे भविष्य के प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षणों, पैनल-आँकड़ा आधारित अध्ययनों तथा गुणात्मक केस-अध्ययनों के माध्यम से संबोधित किया जाना आवश्यक है। नीतिगत दृष्टि से, संस्थागत

सुदृढ़ीकरण, कोर बैंकिंग एवं डिजिटलीकरण का विस्तार, मूल्य-संवर्धन गतिविधियों की ओर क्रमिक उन्मुखीकरण, तथा सहभागी एवं जवाबदेह शासन-प्रणाली का विकास—ये चार स्तंभ बेमेतरा जिले में सहकारी समितियों को अधिक प्रभावी एवं वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। संक्षेप में, सहकारी समितियों का सतत सुदृढ़ीकरण न केवल कृषि साख-प्रणाली को सुदृढ़ करेगा, अपितु बेमेतरा जिले में समावेशी, स्थायी एवं आय-वर्धक कृषि विकास की दिशा में भी एक निर्णायक योगदान प्रदान कर सकता है।

7. संदर्भ सूची

[1] आर.के. शर्मा और ए. वर्मा, "ग्रामीण विकास में सहकारी ऋण समितियों की भूमिका: एक अवलोकन," इंडियन जे. एग्रीक. इकॉन., खंड 62, संख्या 3, पृष्ठ 45-56, 2007.

[2] डी. पटेल, "भारत में सहकारी आंदोलन: ऐतिहासिक विकास और समकालीन प्रासंगिकता," जे. रूरल देव., खंड 29, संख्या 2, पृष्ठ 211-225, 2010.

[3] एस. सिंह और पी. कुमार, "संस्थागत ऋण और कृषि उत्पादकता: प्राथमिक कृषि ऋण समितियों से साक्ष्य," एग्रीक. इकॉन. रिसर्च रिव्यू, खंड 24, पृष्ठ 89-98, 2011.

[4] एम. देशमुख, "महाराष्ट्र में पीएसीएस का प्रदर्शन मूल्यांकन: एक वित्तीय व्यवहार्यता विश्लेषण," कोऑप. पर्सपेक्ट., खंड 45, संख्या 1, पृ. 12-27, 2012.

[5] भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरुद्धार पर कार्य बल की रिपोर्ट। नई दिल्ली, भारत: नाबार्ड प्रकाशन, 2013.

[6] ए. बोस और आर. चटर्जी, "पूर्वी भारत में सहकारी समिति के प्रदर्शन के निर्धारक," दक्षिण एशियाई जे. कॉप. स्टडीज, खंड 8, संख्या 2, पृ. 33-49, 2013.

[7] एन. रेड्डी, "महिला स्वयं सहायता समूह और सहकारी अभिसरण: उभरते रुझान," जेंडर डेव. रेव., खंड 6, संख्या 1, पृ. 55-68, 2014.

[8] छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी बैंक, वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट। रायपुर, भारत: छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी बैंक मर्यादित, 2014.

[9] वी. पांडे, "छत्तीसगढ़ में सहकारी समितियों के माध्यम से धान की खरीद: मुद्दे और चुनौतियाँ," छत्तीसगढ़ जे. एग्री. विज्ञान, खंड 3, संख्या 1, पृष्ठ 21-30, 2015.

[10] के. राव और एस. नायडू, "कृषि सहकारी बैंकों में गैर-निष्पादित परिसंपत्तियाँ: एक जिला-स्तरीय अध्ययन," इंडियन कोऑप. रेव., खंड 52, संख्या 4, पृष्ठ 301-312, 2015.

[11] आर.टी.पी. सिंह, "सीतामढ़ी जिले के विशेष संदर्भ में बिहार के कृषि वित्त में सहकारी समितियों की भूमिका," पीएच.डी. शोध प्रबंध, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, भारत, 2001.

[12] पी. जोशी, "प्राथमिक कृषि ऋण समितियों का डिजिटलीकरण: अवसर और बाधाएँ," जे. रूरल टेक्नोलॉजी, खंड 11, संख्या 3, पृष्ठ 145-158, 2016.

[13] टी. नायर, "ग्रामीण भारत में सहकारी बैंकिंग और वित्तीय समावेशन," इकॉन. पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 51, नंबर 26, पृष्ठ 40-47, 2016.

[14] एस. मिश्रा और डी. साहू, "सहकारी सदस्यता का लघु किसान कृषि आय पर प्रभाव: मध्य भारत से साक्ष्य," कृषि स्थिति भारत, वॉल्यूम 73, नंबर 5, पृष्ठ 18-29, 2017.

[15] छत्तीसगढ़ सरकार, सहकारिता निदेशालय, प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की जिलावार स्थिति रिपोर्ट। रायपुर, भारत: सहकारिता विभाग, 2017.

[16] ए. गुप्ता, "सहकारी संस्थानों में राजनीतिक हस्तक्षेप: एक आलोचनात्मक समीक्षा," इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूम 63, नंबर 2, पृष्ठ 210-224, 2017.

[17] एम. अय्यर और के. सुब्रमणियन, "पश्चिमी भारत में चीनी और डेयरी सहकारी समितियों का तुलनात्मक विश्लेषण," जर्नल ऑफ कोऑपरेटिव मैनेजमेंट, वॉल्यूम 9, नं. 1, पृ. 60-75, 2018.

[18] आर. कुमार, "ग्रामीण सहकारी विपणन में भंडारण और भंडारण अवसंरचना अंतराल," वेयरहाउस लॉजिस्ट.रेव., खंड 14, संख्या 2, पृष्ठ 88-97, 2018.

[19] नाबार्ड, राज्य फोकस पेपर: छत्तीसगढ़। मुंबई, भारत: राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, 2018.

[20] एस. वर्मा और ए. ठाकुर, "सहकारी ऋण सेवाओं से किसान संतुष्टि: एक सर्वेक्षण-आधारित अध्ययन," जे. एग्रीक. एक्सट. रूरल देव., खंड 10, संख्या 4, पृष्ठ 66-74, 2019.

[21] बी. साहू, "छत्तीसगढ़ में पीएसीएस की संस्थागत संरचना और शासन चुनौतियाँ," बस्तर जे. सोश. साइंस, खंड 5, संख्या 1, पृष्ठ 40-52, 2019.

[22] डी. रमेश और पी. मेहता, "फसल बीमा और दावा निपटान में सहकारी संस्थाओं की भूमिका," रिस्क मैनेज. एग्रीक. जे., खंड 7, संख्या 2, पृ. 101-113, 2020.

[23] एच. सिन्हा, "सहकारी समितियों में कोर बैंकिंग समाधान: एक केस स्टडी दृष्टिकोण," इंट. जे. रूरल मैनेज., खंड 16, संख्या 1, पृ. 77-91, 2020.

[24] सहकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, राष्ट्रीय सहकारी नीति - मसौदा ढांचा। नई दिल्ली, भारत: भारत सरकार प्रकाशन, 2021.

[25] एन. तिवारी और आर. साहू, "सहकारी सदस्य और गैर-सदस्य किसानों के बीच उपज अंतर: एक जिला-स्तरीय विश्लेषण," जे. एग्रीक. इकॉन. देव., खंड 12, संख्या 3, पृष्ठ 155-167, 2021.

[26] एस. यादव, "सहकारी प्रभाव अध्ययनों में चयन पूर्वाग्रह: एक पद्धतिगत आलोचना," रेव. देव. इकॉन., खंड 25, संख्या 4, पृष्ठ 890-905, 2021.

[27] अर्थशास्त्र और सांख्यिकी निदेशालय, छत्तीसगढ़, जिला कृषि सांख्यिकी हैंडबुक - बेमेतरा। रायपुर, भारत: छत्तीसगढ़ सरकार, 2022.

[28] ए. बनर्जी और एल. रॉय, "सामूहिक कार्रवाई सिद्धांत और ग्रामीण सहकारी संस्थाएं: ढांचे की समीक्षा," सोस. इंस्टीट्यूशंस रेव., खंड. 18, नं. 2, पृ. 122-136, 2022.

[29] पी. चंद्र, "राष्ट्रीय योजना के अंतर्गत पीएसीएस का कम्प्यूटरीकरण: आदिवासी और ग्रामीण जिलों में कार्यान्वयन चुनौतियाँ," डिजिट. गवर्नेंस जे., खंड 4, नं. 1, पृ. 30-44, 2023.

[30] के. साहू और एम. वर्मा, "कृषि सहकारी समितियों के माध्यम से मूल्य श्रृंखला एकीकरण और आय विविधीकरण: छत्तीसगढ़ के लिए सबक," जे. एग्रीबिजनेस रूरल देव., खंड 15, नं. 2, पृ. 200-215, 2023.

IJMRR